हिंदू संस्कृति (कल्याण-गीताप्रेस)

वेद-मन्त्रोंके उच्चारण-प्रकार—प्रकृतिपाठ एवं विकृतिपाठ

अपौरुषेय एवं ईश्वरोक्त वाणी वेद-शब्दराशिको सुरक्षित तथा पूर्णतः अपरिवर्तितरूपमें मानवसमाजके कल्याणके लिये अक्षुण्ण रखनेहेतु ऋषियोंने इसकी पाठ-विधियोंका उपदेश किया है। ये सभी पाठ ऋषियोंके द्वारा दृष्ट हैं, अतः अपौरुषेय हैं। इनमें तीन प्रकृतिपाठ तथा आठ विकृतिपाठ हैं। संहितापाठ, पदपाठ तथा क्रमपाठ—ये तीन प्रकृतिपाठ हैं। आठ विकृतिपाठोंके नाम हैं—जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड,रथ और घन। इन पाठोंके द्वारा विविध प्रकारसे अभ्यास किये जानेके कारण वेदको आम्नाय (**'आसमन्तात् म्नायते अभ्यस्यते'**) कहा गया है। इन विविध पाठोंकी महिमाके कारण ही आज भी मूल वेदशब्दराशि एक भी वर्ण अथवा मात्राका विपर्यय न होते हुए हमको उपलब्ध हो रही है। सम्पूर्ण विश्वमें ऐसी कोई अविच्छिन्न उच्चारण-परम्परा दृष्टिगोचर नहीं होती। यह वैदिक शब्दराशिका वैशिष्ट्य है।

वेदके संहितापाठका जिन ऋषियोंने दर्शन किया, उनका स्मरण विनियोग आदिमें किया जाता है। वस्तुतः सर्वप्रथम परमेश्वरने ही वेदशब्द-संहिताका दर्शन किया तथा उन्होंने इसका उपदेश किया। इसी प्रकार पदपाठके आद्य द्रष्टा रावण और क्रमपाठके बाभ्रव्य ऋषि हैं। मधुशिक्षाका वचन है—

भगवान् संहितां प्राह पदपाठं तु रावणः।
बाभ्रव्यर्षिः क्रमं प्राह जटां व्याडिरवोचत्॥

प्रत्येक शाखाके पृथक् पदपाठके ऋषि भी उल्लिखित हैं, यथा—ऋग्वेदकी शाकलशाखाके शाकल्य, यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाके आत्रेय तथा सामवेदकी कौथुमशाखाके गार्ग्य ऋषि पदपाठके द्रष्टा हैं। इसी प्रकार प्रातिशाख्यमें

विकृतियोंके सम्बन्धमें भी श्लोक है—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि महर्षियोंने क्रमपाठ एवं विकृतिपाठोंका दर्शन करनेके अनन्तर उनका उपदेश किया। मधुशिक्षाके अनुसार जटापाठके ऋषि व्याडि, मालापाठके ऋषि वसिष्ठ, शिखापाठके ऋषि भृगु, रेखापाठके ऋषि अष्टावक्र, ध्वजापाठके ऋषि विश्वामित्र, दण्डपाठके ऋषि पराशर, रथपाठके ऋषि कश्यप तथा घनपाठके द्रष्टा ऋषि अत्रि हैं। इस प्रकार ये सभी पाठ ऋषिदृष्ट होनेके कारण अपौरुषेय हैं।

संहितापाठ तथा उसकी महिमा—'वर्णानामेकप्राणयोगः संहिता' (कात्यायन), **'परःसन्निकर्षः संहिता'** (पाणिनि), आदि सूत्रोंके द्वारा संहिताका स्वरूप बतलाया गया है। वेदवाणीका प्रथमपाठ जो गुरुओंकी परम्परासे अध्ययनीय है और जिसमें वर्णों तथा पदोंकी एकश्वासरूपता अर्थात् अत्यन्त सांनिध्यके लिये सम्प्रदायानुगत सन्धियों तथा अवसानों (निश्चित स्थलोंपर विराम)-से युक्त एवं उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—इन तीन स्वरोंमें अपरिवर्तनीयतासे पठनीय वेदपाठको 'संहिता' कहते हैं। इसका स्वरूप है—

गुरुक्रमेणाध्येतव्यः ससन्धिः सावसानकः।
त्रिस्वरोऽपरिवर्त्यश्च पाठ आद्यस्तु संहिता॥

यह संहिता नामक वेदपाठ पुण्यप्रदा यमुना नदीका स्वरूप है तथा संहितापाठसे यमुनाके स्नानका पुण्य मिलता है—**'कालिन्दी संहिता श्रेया'**, (या० शि०)। संहितारूप वेदका पाठ सूर्यलोककी प्राप्ति कराता है—**'संहिता नयते सूर्यपदम्,** (या० शि०)। संहितापाठ पदपाठका मूल है।**'पदप्रकृतिः संहिता'** (यास्क), **'संहिता पदप्रकृतिः'** (दुर्गाचार्य) आदि वचनोंके आधारपर यह प्रथम प्रकृतिपाठ है। ऋषियोंने मन्त्रोंके संहितारूप वेदपाठका ही दर्शन किया और यज्ञ, देवता-स्तुति आदि कार्योंमें वेदके संहितापाठका प्रयोग किया जाता है। कहा भी गया है— **'आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः'**। संहिता प्रथम प्रकृतिपाठ है।

पदपाठ तथा उसकी महिमा—'अर्थः पदम्' (वा० प्रा०), **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (पाणिनि) आदि सूत्रोंके द्वारा पदका स्वरूप बतलाया गया है। इसका तात्पर्य है कि किसी अर्थका बोध करानेके लिये पाणिनीय आदि व्याकरणके अनुसार **'सुप्-तिङ्'** आदि प्रत्ययोंसे युक्त वर्णात्मक इकाईको 'पद' कहते हैं। वेदके संहितापाठकी परम्पराके अनुसार स्वरवर्णोंकी सन्धिका विच्छेद करके वैदिक मन्त्रोंका सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। वेदमन्त्रोंका पदपाठ द्वितीय प्रकृतिपाठ माना जाता है। यद्यपि पदपाठका आधार संहितापाठ है, तथापि अग्रिम क्रमपाठका आधार (प्रकृति) पदपाठ होनेके कारण यह प्रकृतिपाठ है। स्वरके सम्बन्धके अनुसार पदके ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा-ग्रन्थोंमें कहा गया है—

'नव पदशय्याः एकादश पदभक्तयः'

वेदमन्त्रोंका पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदीका स्वरूप है। पदपाठ करनेसे सरस्वतीके स्नानका फल प्राप्त होता है—**'पदमुक्ता सरस्वती,'** (या० शि०)। पदपाठका अध्ययन करनेवाला व्यक्ति चन्द्रलोककी प्राप्ति करता है—**'पदं च शशिनः पदम्'** (या० शि०)। विद्वज्जन अर्थज्ञानकी सुविधाके लिये पदपाठको विशेषरूपसे ग्रहण करते हैं। वेदमन्त्रोंके पदपाठसे आराध्य देवके गुणोंका गान किया जाता है।

तैत्तिरीय आदि अनेक शाखाओंमें संहिताके प्रत्येक पदका पदपाठमें साम्प्रदायिक उच्चारण है। ऋग्वेदमें भिन्न पदगर्भित पदोंमें अनानुपूर्वी संहिताको स्पष्ट पद-स्वरूप देकर पढ़ा जाता है। शुक्लयजुर्वेदकी शाखाओंमें प्रातिशाख्यके नियमोंके अनुसार एकाधिक बार आये हुए विशेष पदोंको पदपाठमें विलुप्त कर दिया जाता है। शास्त्रीय परिभाषामें ऐसे विलुप्त पदोंको गलत्पद तथा ऐसे स्थलके पाठको संक्रम कहा जाता है।

पदपाठमें प्रत्येक पदको अलग करनेके साथ यदि कोई पद दो पदोंके समाससे बना हो तो उसे माध्यन्दिनीय शाखामें 'इतिकरण' के साथ दोहरा करके स्पष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्यके नियमोंके अनुसार कतिपय विभक्तियोंमें तथा वैदिक लोप, आगम, वर्णविकार, प्रकृतिभाव आदिमें भी 'इतिकरण' के साथ पदका मूल स्वरूप स्पष्ट किया जाता है। जैसे—**'सहस्रशीर्षेति सहस्रशीर्षा।'** इसे 'अवग्रह' कहते हैं।

पदपाठमें स्वरवर्णोंकी सन्धिका विच्छेद तथा अवग्रह आदि विशेष विधियोंके प्रभावसे यह पाठ संहितासे भी अधिक कठिन हो जाता है। इन नियमोंके कारण ही यह पदच्छेद नहीं है, किंतु पदपाठ कहा जाता है।

क्रमपाठ तथा उसकी महिमा— **'द्वे द्वे पदे सन्दधात्युत्तरेणोत्तरभावसानमपृक्तवर्जम्'** (वा० प्रा०) आदि सूत्रोंके द्वारा क्रमपाठका स्वरूप बतलाया गया है। अपृक्त आदि विशेष स्थलोंको छोड़कर सामान्यतः दो-दो पदोंका सन्धियुक्त अवसानपर्यन्त सस्वर पाठ 'क्रमपाठ' कहलाता है। पाणिनिके धातुपाठके अनुसार एक-एक पैरको बढ़ाना क्रम है। उसी भावसे क्रमपाठमें भी एक-एक पदको आगे बढ़ाकर पढ़ते हैं। इस कारण इस पाठको क्रमपाठ कहा जाता है। क्रमपाठ यद्यपि पदपाठके आधारसे ही है, तथापि जटा आदि विकृतिपाठोंका मूल क्रमपाठ है। अतः आठों विकृतिपाठोंका प्रकृतिपाठ क्रमपाठ है तथा यह तृतीय प्रकृतिपाठ है।

ऐतरेय आरण्यक (३। १। ३) तथा ऋग्वेद प्रातिशाख्य वर्गद्वयवृत्तिके अनुसार अन्नकामनाकी पूर्तिके लिये संहितापाठ, स्वर्गकामनाकी पूर्तिके लिये पदपाठ तथा अन्न-स्वर्ग दोनों कामनाओंकी पूर्तिके लिये क्रमपाठका विधान है। वाराहपुराणमें कहा गया है कि संहितापाठसे दोगुना पुण्य, पदपाठसे तिगुना पुण्य तथा क्रमपाठसे एवं जटादि विकृतियोंके पाठसे छः गुना पुण्य प्राप्त होता है—

संहितापाठतः पुण्यं द्विगुणं पदपाठतः।
त्रिगुणं क्रमपाठेन जटापाठेन षड्गुणम्॥

आठ विकृतिपाठ और उनकी महिमा—मन्त्रात्मक वैदिक शब्दराशिकी अक्षुण्ण तथा निर्भ्रान्त परम्पराकी सुरक्षा इन जटा आदि आठ विकृतिपाठोंसे ही हो सकी है। इसलिये जटादि विकृतिपाठोंमें निरत विद्वानोंको 'पङ्क्तिपावन' माना गया है—

जटादिविकृतीनां ये पारायणपरायणाः।
महात्मानो द्विजश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः॥

यद्यपि कुछ व्यक्ति इन वचनोंके आधारपर भी मात्र ऋग्वेदमें अष्टविकृतिपाठ होता है, यह कहते हैं; परंतु माध्यन्दिन आदि शाखाओंके अध्येता वैदिक विद्वानोंकी अत्यन्त प्राचीन अविच्छिन्न परम्परासे सभी विकृतिपाठोंका अध्ययनाध्यापन प्रचलित है। कात्यायनीय चरणव्यूह आदि ग्रन्थोंके (वारे शास्त्री प्रभृतिद्वारा सम्पादित) प्रामाणिक संस्करणोंमें विकृतियोंका उल्लेख होनेके कारण अन्य शाखाओंमें भी विकृतिपाठ करना अत्यन्त प्रामाणिक है। इसके लिये स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डमें जगत्की आधारभूता वेदात्मिका गौ जटा-घन आदि विकृतियोंसे विभूषित है, यह उल्लेख है—

सर्वस्याधारभूताया वत्सधेनुस्त्रयीमयी।
अस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता॥
ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा।
इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा॥
शान्तिपुष्टि शकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता।
उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः॥

इसके द्वारा चतुर्वेदात्मिका त्रयीवाणी जटा-घन आदि विकृतिपाठोंसे प्राणियोंपर अनुग्रह करती है, यह स्पष्ट निर्देश है। विकृतिपाठ-सम्बन्धी इन वचनोंको वैदिक परम्परामें प्रामाणिक माना जाता है; क्योंकि वेदसम्मत स्मृतिवचनों तथा आचारोंका प्रामाण्य मीमांसा एवं धर्मशास्त्रमें सर्वांशतः माना गया है।

जटापाठ—इस प्रथम विकृतिपाठमें दो पदोंको अनुक्रम तथा संक्रम इस प्रकार तीन बार सन्धिपूर्वक अवसानरहित पढ़ा जाता है। जैसे—**'विष्णोः', कर्माणि विष्णोर्विष्णोः कर्माणि।'** इत्यादि। जटापाठ पञ्चसन्धियुक्त भी होता है। इसमें अनुक्रम, उत्क्रम, व्युत्क्रम, अभिक्रम तथा संक्रम—ये पाँच क्रम होते हैं। पदोंको संख्याके साथ प्रदर्शित करते हुए इसका स्वरूप इस प्रकार है—**'विष्णोः कर्माणि** (अनुक्रम), **कर्माणि, कर्माणि** (उत्क्रम), **कर्माणि विष्णोः** (व्युत्क्रम), **विष्णोर्विष्णोः** (अभिक्रम) और **विष्णोः कर्माणि** (संक्रम)।'

मालापाठ—इसके दो भेद हैं—पुष्पमाला और क्रममाला। अधिक प्रचलित पुष्पमालापाठमें जटाकी भाँति ही तीनों क्रम पढ़े जाते हैं, किंतु प्रत्येकके बीचमें विराम किया जाता है। जैसे—**'विष्णोः कर्माणि। कर्माणि विष्णोः। विष्णोः कर्माणि।'** इत्यादि।

शिखापाठ—जटापाठके त्रिविध क्रमोंके बाद एक आगेका पद ग्रहण करनेपर शिखापाठ हो जाता है।

जैसे— **'विष्णोः कर्माणि कर्माणि विष्णोर्विष्णोः कर्माणि पश्यत।'** इत्यादि।

रेखापाठ—इसमें आधी ऋचा अथवा सम्पूर्ण ऋचाके दो पदोंका क्रमपाठ, तीन पदोंका क्रमपाठ, चार पदोंका क्रमपाठ—इस प्रकार क्रमशः किया जाता है। इसी प्रकार व्युत्क्रममें भी करनेके बाद संक्रममें दो-दो पदोंका ही पाठ होता है। प्रत्येक क्रमके आरम्भमें एक पूर्ववर्तिपद छोड़ते हुए अवसानपूर्वक यह पाठ होता है। जैसे—

ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं॥
सं वदन्ते सोमेन। सोमेन वदन्ते सं। सं वदन्ते॥
वदन्ते सोमेन सह राज्ञा। राज्ञा सह सोमेन वदन्ते।
वदन्ते सोमेन॥ सोमेन सह। सह राज्ञा। इत्यादि।

ध्वजपाठ—इसके अन्तर्गत प्रथम दो पदोंका क्रम तथा अन्तिम पदोंका क्रम, इस प्रकार साथ-साथ आदिसे अन्त और अन्तसे आदितक पाठ होता है। यह एक मन्त्रमें अथवा एक वर्गमें आदिसे अन्ततक हो सकता है। जैसे—

ओषधयः सं। पारयामसीति पारयामसि। सं वदन्ते। राजन् पारयामसि। वदन्ते सोमेन। तं राजन्। इत्यादि।

दण्डपाठ—अनुक्रमसे दो पदोंके पाठके अनन्तर व्युत्क्रममें क्रमशः एक-एक पद बढ़ाते हुए पाठ करना दण्डपाठ है। यह विधि अर्धर्चतक चलती है। जैसे— **'ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं। सं वदन्ते॥ वदन्ते समोषधयः। ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन॥ सोमेन वदन्ते समोषधयः।'** इत्यादि।

रथपाठ—इसके तीन भेद हैं—द्विचक्र, त्रिचक तथा चतुश्चक्र। द्विचक्र रथ अर्धर्चशः होता है। त्रिचक्र रथ समानपद संख्यावाले तीन पदोंकी गायत्री छन्दकी ऋचामें ही पादशः होता है। चतुश्चक्र रथ भी पादशः होता है। त्रिचक्र रथका उदाहरण यह है—

प्रथम अनुक्रम—विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इन्द्रस्य युज्यः।

व्युत्क्रम—कर्माणि विष्णोः। व्रतानि यतः। युज्य इन्द्रस्य।

द्वितीय अनुक्रम—विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इन्द्रस्य युज्यः। कर्माणि पश्यत। व्रतानि पस्पशे। युज्यः सखा।

व्युत्क्रम—पश्यत कर्माणि विष्णोः। पस्पशे व्रतानि यतः। सखा युज्य इन्द्रस्य। इत्यादि।

घनपाठ—वैदिक विद्वानोंमें सर्वाधिक समादृत घनपाठ भी चार प्रकारका है। घनके दो भेद तथा घनवल्लभके भी दो भेद हैं। घनपाठमें शिखापाठ करके उसका विपर्यास करनेके बाद पुनः उन तीन पदोंका पाठ किया जाता है। जैसे— **'ओषधयः सं समोषधय ओषधयः सं वदन्ते वदन्ते समोषधय ओषधयः सं वदन्ते॥'** इत्यादि। घनवल्लभमें पञ्चसन्धियुक्त पाठ होता है। अनुक्रम, उत्क्रम, व्युत्क्रम, अभिक्रम और संक्रम—इन पाँच प्रकारकी सन्धियोंसे युक्त होनेके कारण इसे पञ्चसन्धियुक्त घन भी कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

'पावका नः। नो नः। नः पावका। पावका पावका। पावकानः। पावका नो नः पावका पावका नः सरस्वती सरस्वती नः पावका पावका नः सरस्वती।' इत्यादि। इनके अतिरिक्त अन्य भी अवान्तर भेद हैं, जो ज्योत्स्नावृत्ति आदि ग्रन्थोंसे ज्ञातव्य हैं।

उपर्युक्त अष्टविकृतिके प्रकारोंसे यह स्पष्ट है कि महर्षियोंने इन वैज्ञानिक पाठ-प्रकारोंके आधारपर वेदमन्त्रोंकी रक्षा अत्यन्त परिश्रमपूर्वक की तथा इसमें एक भी स्वरवर्ण अथवा मात्राकी त्रुटि न हो, इसका उपदेश दिया। इन पाठोंके कारण आज भी विश्वकी धरोहरके रूपमें वेद शुद्धरूपसे प्राप्त हो रहे हैं।

[डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र]

जो नित सबमें देखता, चिन्मय श्रीभगवान्।
होता कभी न वह परे हरि-दृगसे विद्वान्॥
ले जाते हरि स्वयं आ, उसको निज परधाम।
देते नित्य स्वरूप निज चिदानन्द अभिराम॥